हिन्दी साहित्य में संत काव्य : भाव, भाषा एवं क्षेत्र

प्रो. रश्मि कुमार
हिंदी और आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

संक्षिप्त सार

संत काव्य हिन्दी साहित्य को आदिकाल की समाप्ति के मोड़ पर अपना पथ संधान करता हुआ दिखाई देता है। इस काव्य में संतों की सहज, अकृत्रिम तथा आध्यात्मिक वाणी का प्रकाशन हुआ है। इसकी अनुभूतियाँ सीधी जन–जीवन से जुड़ी हुई हे। अनेक संप्रदायों को आत्मसात करने वाली इस धारा में धर्म व संप्रदाय की शास्त्रीय विवेचना नहीं है। यह तो अनुभूत सत्यों की नींव पर खड़ा सशक्त काव्य है, जो अपनी अलंकारहीनता, भाषा, सौष्ठव और सामाजिक साधन शाश्वत मूल्यों से युक्त है। यह काव्य अपनी स्वतंत्रा सत्ता और सामाजिक साधन का पथ पकड़ कर चला है। उपर्युक्त विषय वस्तु शोध के लिए सर्वथा उपयुक्त एवं नवीन है। संत काव्य पर शोध की आधुनिक युग में इसलिए भी परम आवश्यकता है कि भाव, भाषा एवं क्षेत्रा की दृष्टि से हिन्दी का यह क्रांतिकारी साहित्य रहा है। साहित्य में सामान्य रूप से हम सुन्दर, ललित और कोमल भावों की अविव्यंजना मधुर शब्दों में खोजते है। संत साहित्य इस प्रकार का ललित साहित्य नहीं है इसे हम पारम्परिक साहित्य मानते है। संतों के भाव निर्मल हैं किन्तु उनमें अनगढ़पन और एक सीमा तक भदेशपन भी है। भाषा और भाव की दृष्टि से हम जिसे काव्य शास्त्रा में ग्राम्यक दोष कहते हैं वह संतों की भाव और भाषा दोनों में प्राप्य है। कबीर में तो यह कदम–कदम पर है।

शब्द संकेत : *संत काव्य, हिन्दी, साहित्य, सामाजिक, साधन और शाश्वत*

१.विषय प्रवेश

संत शब्द 'सत्' धातु से बना है और व्यापक अर्थ में हम किसी भी ईश्वरोन्मुखी सज्जन पुरूष को सन्त कह सकते हैं। सन्त शब्द का पारम्परिक अर्थ महात्मा, सज्जन, त्यागी, सिद्ध या कभी–कभी भक्त का भी द्योतक करता है। परंतु कुछ समय से मध्यकालीन हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा के लिए संत काव्य और निर्गुण धारा के कवि के लिए संत कवि शब्द प्रचलित हो गए हैं। भक्ति का आलम्बन सगुण ईश्वर अधिक उपयुक्त है। अतः निर्गुण भक्ति नाम, कतिपय विद्वानों की दृष्टि में अपने आप में एक असंगति प्रस्तुत करता है। वस्तुतः इस काव्यधारा के कवियों का एक दृष्टिकोण हैं, जो संत शब्द द्वारा व्यंजित होता है। इस संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने संत शब्द की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की है। डॉ. पीताम्बर बडथवाल ने संत शब्द की व्युत्पत्ति 'शान्त' शब्द से मानते हुए इसका अर्थ निवृत्ति मार्गी या वैरागी किया है। परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार 'संत' शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है, जिसने सत् रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो जो सत्यस्वरूप नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो, अर्थात् अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में प्रतिष्टित हो गया हो, वहीं 'संत' है। डॉ. विनयमोहन शर्मा ने व्यावहारिक दृष्टि से संत का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया है–''जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलनभाव को साध्य मानकर लोक–मंगल की

कामना करता है, वह संत है।''

व्यापक एवं व्यावहारिक अर्थ में हम किसी भी ईश्वरोन्मुखी अथवा सज्जन व्यक्ति को संत कहते हैं । गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के अन्तर्गत संतों के जो लक्षण दिए हैं, वे इसी व्यापक अर्थ को लक्ष्य करके लिखे गए हैं–**'संत' समागम हरि–भजन, तुलसी दुर्लभ–दोष तथा –''जड़ चेतन गुण मय विश्व कीह्न करतार। सत–हंस पयगुन गहहिं परिहरि बारि बिकार''** इत्यादि। संकुचित या रूढ़ अर्थ में केवल निर्गुणोंपासकों को ही सन्त कहा जाता है तथा सगुणोपासकों को भक्त कहा जाता है । यद्यपि व्यापक अर्थ में संत और भक्त समानर्थी हैं तथापि संतकाव्य से कबीर, दादू आदि के काव्य का बोध होता है तथा तुलसी, सूर आदि के काव्य को भक्ति काव्य कहा जाता है।

संत शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन है । इसका प्रयोग कालिदास में मिलता है । महाकवि लिखते हैं–**''संतःपरीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।''** यहा संत शब्द का प्रयोग ठीक इसी अर्थ में हुआ है, जिस अर्थ में आज वह हिन्दी के निर्गुणियां कवियों के लिए प्रयुक्त होता है । संत उन्हीं महात्माओं को कहा गया है जो जीवन में सत्यखंडों का स्वयं साक्षात्कार करते थे। वे जीवन की प्रयोगशाला में सत्य का अनुसंधान करते थे तथा सत्य और असत्य का निर्णय करके सत्य का साक्षात्कार करते थे। साक्षात्कार किये हुए सत्य खण्डों की अभिव्यक्ति को कबीर ने 'साखी' कहा है–**साखी आंखी ज्ञान की, यथा–तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आंखिन की देखी ।** कबीर ने स्पष्ट घोषित किया है–

साई यहै विचारिया साखी कहै कबीर ।
भव सागर के बीच में, कोई पकड़े तीर ।।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास ने संत के जिन लक्षणों के प्रति संकेत दिया, वे निर्गुणिया संतों के प्रधान गुण थे । कबीर का यह कथन द्रष्टव्य है–

निरबैरी निहिंकामना साई सेती नेह ।
विषया सूँ न्यारा रहे संतन का अंग एह ।।

संतों ने वैष्णव भक्ति के कई तत्वों को ग्रहण किया है। सर्वप्रथम तो उन्होंने ईश्वर के पर्यायवाची के रूप में राम, गोविन्द, हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया है। दूसरे उन्होंने सगुण साधकों के समान अपनी आत्मा को परमात्मा की अपेक्षा किंचित हीन माना है। महाराष्ट्रीय संतों ने प्रेमासक्ति व तन्मयता ग्रहण की है। अस्तु परंतु फिर भी संत और भक्त दो भिन्न अभिधान हैं। यद्यपि तत्वतः निर्गुणमार्गी साधनामूलक चिन्तन में कोइ अंतर नहीं है, तथापि इसमें कुछ व्यावहारिक भेद अवश्य हैं, जिसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती है। **''निर्गुण कहे सगुण बिन से गुरू तुलसीदास''** कहने वाले गोस्वामी तुलसी दास ने श्रेष्ठ संत का वर्णन करते समय संत की प्रधान विशेषता सगुणोपासना बतलाई है। यह बात दूसरी है कि सगुणोपासकों के अतिरिक्त वे महात्मा भी संत पद के अधिकारी हैं जो वर्णाश्रम व्यवस्था में आस्था रखते हुए द्विजपद–प्रेम साधक हैं–

सगुण उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम जिन्ह के द्विजपद प्रेम।।

सगुण धारा के भक्तों और निर्गुण धारा के मध्य अन्तर करने के लिए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन पर्याप्त होना चहिए, ''सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अर्थात् नाथ पंथियों के निर्गुण ब्रह्म को। प्रथम ने हिन्दू जाति के बाह्माचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयास किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का, एक ने श्रद्धा को पथ–प्रदर्शक माना, दूसरी ने शान को, एक ने सगुण भगवान को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण राम को सगुण भाव के भक्तों की महिमा उनके असीम धैर्य और उध्यवसाय में हैं किन्तु निर्गुण श्रेणी के भक्तों की महिमा उनके उत्कृष्ट साहस में है। एक ने सब कुछ स्वीकार करने का अद्भुत

साहस दिखाया और दूसरे ने सब कुछ छोड़ देने का असीम साहस।'' 'संत' शब्द का प्रयोग निगुर्ण और सगुण दोनों प्रकार की भक्ति की धाराओं के अन्तर्गत किया गया है, परंतु धीरे–धीरे यह शब्द निर्गुण कवियों के अर्थ में रूढ़ हो गया है।

वैष्णव भक्ति–आंदोलन– संत मत के प्रवर्तन काल तक रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, रामानन्द आदि कई वैष्णव आचार्यों द्वारा भक्ति आंदोलन का प्रचार प्रसार किया जा चुका था। संत कवियों ने वैष्णव भक्ति के अनेक तत्वों को ग्रहण किया, यथा–ईश्वर के पर्यायवाची शब्द–राम, गोविन्द, हरि आदि तथा उनकी प्रेम लक्षणा भक्ति। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर, रविदास, सेना, पीपा अनेक संत कवि स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। संतों ने प्रेम तत्व वैष्णवों से ग्रहण किया था, अथवा सूफियों से, इसका उत्तर यह है कि संतों ने वैष्णवों के प्रति तो श्रद्धा व्यक्त की, यथा–

मेरे संगी दो जणाँ, एक वैष्णवों एक राम।
वो है दाता मुकति का, जे सुमिरावै राम।।

और सूफी दरवेशों के प्रति इन्होंने उपेक्षा की अभिव्यक्ति की, यथा–

संख सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जिनका दिल स्यावित नहीं, तिनकों कहा खुदाइ ?

संत काव्य का प्रवर्तन– संत मत का उदय आकस्मिक नहीं था। संत मत का प्रवर्तन सर्वप्रथम महाराष्ट्र के संतों द्वारा किया गया। महाराष्ट्र के संतों में नामदेव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनकी विचारधारा में संत मत के प्राणभूत तत्व संवलित थे। नामदेव की विचारधारा के प्रचार में सत त्रिलोचन, सदन, वेणी आदि ने अपना योग प्रदान किया। आचार्य रामानन्दजी ने संत मत के बीजाणु इन्हीं से ग्रहण किए थे और उन्हें अपने व्यक्तित्व का छाप के साथ कबीर को अर्पित किए।

भक्ति द्राविणी ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्तदीप नवखंड।।

उपर्युक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट है कि संत मत एवं संत काव्य विदेशी साहित्य अथवा भारतीय धर्म–साधना के प्रभाव से विकसित संप्रदाय एवं साहित्य नहीं है। वह तत्कालीन भक्ति–आंदोलन द्वारा प्रभावित अपभ्रंश की काव्य धारा विशेष का विकसित रूप है जो महाराष्ट्र में होता हुआ हिन्दी–प्रदेश में पहुँचा और जिसका नेतृत्व कबीर ने किया।

यद्यपि नामदेव संतकाव्य परम्परा के प्रवर्तक थे तथापि अधिकांश विचारक कबीर को ही उत्तर भारत में संत काव्य का प्रवर्तक मानते हैं । इसका मूल कारण हैं, नामदेव का व्यक्तित्व कोमल था और वह अपने किसी संघर्ष या वाग्युद्ध में प्रवृत नहीं हुए । कबीर का व्यक्तित्व अक्खड़ था। उन्होंने काशी के पण्डितों को ललकारा और अपनी युक्तियों से उनके मुँह बन्द कर दिए। उन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा, सुदृढ़ व्यक्तित्व, प्रौढ़ चिन्तन एवं कवि–सुलभ सहृदयता एवं मार्मिक व्यंजना शैली के बल पर संत मत और संत काव्य का प्रचार शीघ्र ही संपूर्ण उत्तरी भारत में कर दिया। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार **''कबीर साधना के क्षेत्रा में युग गुरू थे और साहित्य के क्षेत्रा में भविष्य स्रष्टा।''**

२. संत काव्य की प्रमुख विशेषताओं का निरूपण

संत काव्य हिन्दी साहित्य को आदिकाल की समाप्ति के मोड़ पर अपना पथ संधान करता हुआ दिखाई देता है। इस काव्य में संतों की सहज, अकृत्रिाम तथा आध्यात्मिक वाणी का प्रकाशन हुआ है। इसकी अनुभूतियाँ सीधी जन–जीवन से जुड़ी हुई हे। अनेक संप्रदायों को आत्मसात करने वाली

इस धारा में धर्म व संप्रदाय की शास्त्रीय विवेचना नहीं है। यह तो अनुभूत सत्यों की नींव पर खड़ा सशक्त काव्य है, जो अपनी अलंकारहीनता, भाषा, सौष्ठव और सामाजिक साधन शाश्वत मूल्यों से युक्त है। यह काव्य अपनी स्वतंत्रा सत्ता और सामाजिक साधन का पथ पकड़ कर चला है। उपर्युक्त विषय वस्तु शोध के लिए सर्वथा उपयुक्त एवं नवीन है। संत काव्य पर शोध की आधुनिक युग में इसलिए भी परम आवश्यकता है कि भाव, भाषा एवं क्षेत्रा की दृष्टि से हिन्दी का यह क्रांतिकारी साहित्य रहा है। साहित्य में सामान्य रूप से हम सुन्दर, ललित और कोमल भावों की अविव्यंजना मधुर शब्दों में खोजते है। संत साहित्य इस प्रकार का ललित साहित्य नहीं है इसे हम पारम्परिक साहित्य मानते है। संतों के भाव निर्मल हैं किन्तु उनमें अनगढ़पन और एक सीमा तक भदेशपन भी है। भाषा और भाव की दृष्टि से हम जिसे काव्य शास्त्रा में ग्राम्यक दोष कहते हैं वह संतों की भाव और भाषा दोनों में प्राप्य है। कबीर में तो यह कदम–कदम पर है। यही कारण है कि डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें वाणी का डिक्टेटर कहा है। दूसरी बात इन कवियों में जो विशेष ध्यान देने की है वह है इनके विषय का क्षेत्रा। इन्होंने गुरू पर लिखा किन्तु वह गुरू सामान्य गुरू केवल पढ़ने –पढ़ाने वाला नहीं है। वह परम गुरू है जो जीवन का उत्थाता एवं उद्‌गाथा है। उसी प्रकार इन कवियों ने प्रेम की संबंध में लिखा। इतना ही नहीं, सुहागरात के संबंध में भी लिखा। प्रेमी–प्रेमिका के संबंध पर भी लिखा। लेकिन जो कुछ भी लिखा वह सामान्य अथवा पारम्परिक कवियों की धारना से परे हैं। कबीर ने कहा–**दुल्हिन गाबहु मंगल चार। मोर घर आए राजा राम भरतार।।** अपने परम प्रेम के निरूपण के लिए इन कवियों ने वैपरित्य सौन्दर्य के लिए जागतिक उदाहरण दी, ताकि गुढ़ से गुढ़ बात भी स्पष्ट हो जाय– **यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं। शीश काटि भूमि मा धरै तब पैठे घर माहि।।** इस प्रकार संत काव्य भाव, भाषा और क्षेत्रा तीनों में ही आज के युग के लिए ऐसी सामग्री प्रस्तुत करता है जो नैतिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर उसे उन्नयन प्रदान कर सकता है। इस शोध के द्वारा प्रमुख संतो एवं संतकाव्यों की वर्तमान समय में उपयोगिता को रेखांकित किया जा सकेगा।

३.साहित्यिक सर्वेक्षण

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा के तहत विभिन्न आचार्यों द्वारा लिखित एवं संपादित पुस्तकों का अवलोकन किया गया है।

भारद्वाज, दिनेशचन्द्र (1970)मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति,भारतीय ऋषियों द्वारा प्राणी मात्र में जिस सद्‌भावना का विचार किया गया था। उसे लेकर भारतीय जीवन अनेक धार्मिक विश्वास एवं सैकड़ों प्रकार के रीति दृ रिवाज आपस में मिल–जुलकर रगड़ खाते एक ही धारा में चलती रही। सभी एक दुसरे के नुकीले कोनों की असहजता और कठोरता को छाँटते हुए उसे एक सुघढ़ दृ सुखद–सरल रूप में सहज ही बदलते रहे। सभी एक दुसरे के प्रति सम्मान और सहिष्णुता को "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति " के भाव से स्वीकार कर अनेक प्रकार के अनमेल धार्मिक विश्वासों तथा कभी दृ कभी विरोधाभासों में भी अन्तर्निहित भावमयी एकता को सहजता से ढुँढ़ निकलते रहे। वास्तव में यह सारा कुछ भारतीय सामाज में एकात्म भाव और सामाजिक समरसता के रूप में जीवन का सहज अंग बन गया।

चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम (1975): संत साहित्य के प्रेरणा स्रोत, संत कवियों ने जन दृ जन में छुपे एकात्म भाव को जगाने का प्रयास किया। लोक साहित्य की रचना की। सन्त साहित्य का उद्देश्य "लोक" में फैले अविश्वास, अनास्था एवं कुरीतियों को दुर करना था। "सन्तों ने धर्म का जो भाव रखा वह मानवीय था उन्होंने धार्मिक पहलुओं के अध्ययन करने के साथ ही साथ सांस्कृतिक, सामाजिक एवं लौकिक स्थिति का भी आंकलन किया उन्होंने यह अनुभव किया कई भारतीय सामाजिक जीवन संक्रमण के काल से गुजर रहा था। भारतीय जीवन अपनी लम्बी यात्रा और बाहर से आये आतातायी के प्रभाव कै कारण अस्त व्यस्त हो गया हैं।

जार्ज, डॉ. एम(1978) भक्ति आंदोलन और साहित्य, भारतीय जीवन में निहित सद्भावना, समरसता को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।यहां कुछ प्रमूख संतो के व्यक्तित्व और कृतित्व की चर्चा हम करेंगे। संत कबीरदास ने जन्म से ऊँच दृ नीच माने जाने वाली परम्परा पर प्रहार किया और इसका उपहास भी उड़ाया। सभी मनुष्यों के जन्म की विधी एक ही हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण के क्यों न हों। मानव शरीर त्वचा, अस्थि, माँस दृ मज्जा, मल दृ मूत्र आदी एक सदृश हैं। एक ही रक्त एवं शरीर के अंग सब एक ही समान हैं। एक ही बूँद से समस्त मानव सृष्टि की गई हैं, फिर ब्राह्मण और शुद्र का अंतर कैसा?

एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रिधुर एक गूदा।
एक बूँद सों स्त्रिस्टि रची हैं, को बाम्हन को सूदा।।

संत रैदास एक चर्मकार परिवार में जन्म लिए थे। अपनी आध्यात्मिक दृ साधना, चरित्रबल तथा विनयशील स्वभाव के कारण लाखों लोग, उनके जीवनकाल में ही उनके शिष्य हो गए। उन्होंने ईश्वरभक्ति का व्यापक साहित्य लिखा, किंतु अपने परिवारिक कार्य को लेकर कोई ग्लानि नहीं थी। आदि प्रमुख शोधपरक ग्रन्थों में संत काव्यों के संबंध में विशद चर्चा की गई है।

४.अध्ययन का उद्देश्य

आलेख का उद्देश्य संत काव्यों के उपदेशों का प्रभाव भारतीय समाज को कितना प्रभावित किया है यह जानना आलेख का प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक संतों के नाम पर अलग–अलग सम्प्रदाय होने के बाद भी सामाजिक समरसता को बनाए रखने में सबों का उपदेश एक सा प्रतीत होता है जिसे समन्वित रूप से प्रचारित करने पर और भी अधिक एकता को बनाया जा सकता है कि नहीं यह जानना भी आलेख का उद्देश्य है।

५.अध्ययनपद्धति

यह आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषण पर आधारित है। साथ ही ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति के आधार पर विभिन्न संस्थाओं, कार्यालयों एवं पुस्तकालयों से तथ्यों का संकलन किया गया है। वर्तमान अध्ययन मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर ही आधारित है।

६.निष्कर्ष

इस प्रकार हम हम कह सकते हैं कि मध्यकालीन लोक स्थिति दिग्भ्रमित थी। इस काल में धर्म, सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक, राजनैतिक व्यवस्था लुन्ज पुन्ज थी। कर्मकाण्ड का बोलवाला होने से लोक में आराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। मध्यकालीन धर्म का विषय ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का हो गया था। ऐसे समय में मध्यकालीन संत काव्य धारा भारत के प्रचीन जीवन में व्याप्त सामाजिक समरसता को पुनः अपने कृतित्व और व्यक्तित्त्व के माध्यम से जीवंत करने का प्रयास करती हैं। सभी संत कवियों का काव्य मानव मात्र के एकत्व के मूल सिद्धांत से अनुप्राणित हैं। सभी संत अपने मन दृ वचन दृ कर्म से भारतीय सामाज को समता ममता एकता से सूत्र में बांधकर समरस समाज निर्माण की व्यापक चेष्टा करते दिखाई देते हैं।

संदर्भ स्रोत

१. भारद्वाज, दिनेशचन्द्र (1970). मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर।
२. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम (1975). संत साहित्य के प्रेरणा स्रोत, राजपाल एंड सन्स,, दिल्ली।
३. जार्ज, डॉ. एम (1978). भक्ति आंदोलन और साहित्य, प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण।

४. लूनिया, वी. एन. (1988). भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, एजुकेशनल पब्लि, आगरा।
५. ओझा, रायबहादुर महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र (1951). मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।
६. शर्मा, शिवशंकर (1970). भक्तिकालीन साहित्य में योग भावना, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।
७. श्रीवास्तव आशीर्वादीलाल (1982). मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा।
८. शर्मा, मथुरालाल (1970). मुगलकालीन भारत : राजनैतिक और संस्कृतिक, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर ।
९. विद्यालंकार सत्यकेतु (1968). भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, सरस्वती सदन मसूरी।